पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/09510 डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2024-2026 उज्जैन (म.प्र.)
UGC Care Listed and Peer Reviewed Referred Bilingual Monthly International Research Journal
प्रेषण दिनांक 30 पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 27, अंक 263 सितम्बर 2025

सावित्रीबाई फूले
भारत की प्रथम महिला शिक्षिका

“ स्वाभिमान से जीने के लिए पढ़ाई करो।
पाठशाला ही इंसानों का सच्चा हितैषी है। ”

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश

तमसो मा ज्योतिर्गमय

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 27 अंक 263
सितम्बर 2025

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/09510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

Peer Review Committee
डॉ. श्रवणकुमार मेघ, जोधपुर(राजस्थान)
प्रो. दत्तात्रय मुरुमकर, मुंबई (महाराष्ट्र)
प्रो. रश्मि श्रीवास्तव, उज्जैन (म.प्र.)
डॉ.बी.ए.सावंत, सांगली (महाराष्ट्र)

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	3
2	Execution of International treaties and conventions under the ambit of the Constitution of India.	- Upasana Kalgotra Research Scholar - Dr. Anshu Jain Assistant Professor	4
3	A Judicial Metamorphosis : Tracing the Shift from Formal to Substantive Equality in Indian Constitutional Law	Ritesh Patil	7
4	डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की आत्मीयता और 'आश्वस्त के सत्ताईस वर्ष'	डॉ. रुपचंद गौतम	11
5	डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर- आधुनिक भारत के निर्माता	प्रा. डॉ. वसंत आबासाहेब खरात	14
6	"Echoes of Equality: Ambedkar's Literary Fire"	Dr. Surender Singh Associate Professor of English	18
7	सोशल मीडिया पर दलित उत्पीड़न : डिजिटल स्वतंत्रता बनाम जातिगत नफरत	राधा सिंह (शोधार्थी) डॉ. मिली सिंह (सहायक प्राध्यापक)	22
8	अवसाद प्रबंधन में योग की भूमिका	दिगविलास दिनकरभाई कानड़िया (शोधार्थी) डॉ. शाम गणपत तिखे (सहायक प्राध्यापक)	25

UGC Care Listed Journal

खाते का नाम – आश्वस्त (Ashwast)
खाते का नं.– 63040357829
बैंक – भारतीय स्टेट बैंक,
शाखा– फ्रीगंज, उज्जैन (Freeganj, Ujjain)
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 20/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 200/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 2,000/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 20,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

आज की पढ़ाई के व्यावसायिक चरित्र के बारे में बात करें तो ''आज छात्र दिन–रात डिप्लोमा और नम्बरों के लिये पढ़ते रहते हैं और इस बीच जिन विषयों के लिये पढ़ते हैं, उनमें उनकी सारी रुचि समाप्त हो जाती है। भाषा विज्ञान, इतिहास, सब अच्छी चीजें केवल पास होने के नम्बर बनकर रह जाती है। कारण, इसके पीछे केवल व्यक्तिगत लाभ की इच्छा है। आज डिप्लोमा/डिग्री का अर्थ है–पैसा।''

शिक्षक एक मानवीय सामाजिक दायित्व का निर्वाह करने वाले इन्सान की जगह विशुद्ध वेतनभोगी, पिटी–पिटाई डगर का राही और चाटुकार बनकर क्यों रह जाता है?

अंग्रेजी शिक्षा के जन्मदाता मैकाले है। मैकाले, ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ये तीनों समकालीन है। सन् 1873 में ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले ने भारतीयों के लिए पहला स्कूल पूना में खोला। सावित्री बाई ने नाना प्रकार के दुःख, अपमान सहकर भी देश की बालिकाओं को पढ़ने का रास्ता प्रशस्त किया। ऐतिहासिक तथ्य बताते है कि भारतीय शिक्षा के पंच प्रमुख हैं–ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, महात्मा ज्योति बा फुले, सावित्रीबाई फुले, मौलाना सर सैयद अहमद खान और स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अत्यंत गरीब परिवार के थे। कुप्पी जलाने के लिये मिट्टी का तेल भी उनके पास नहीं था। गली के बिजली के खंभे की पीली हल्की रोशनी में पढ़ाई करके कोलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति पद तक पहुंचे। सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा जैसी कुप्रथाओं के मारे बंगाल में उन्होंने नारी शिक्षा का आन्दोलन चलाया।

ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले ने और भी कठिन काम किया। महाराष्ट्र के घोर जातिवादी और पुरुष वर्चस्ववादी समाज में उन्होंने स्त्री शिक्षा के साथ ही पिछड़ी– दलित जाति की स्त्रियों की शिक्षा का बीड़ा उठाया। पुणे के ताकतवर ब्राह्मणों ने दोनों को घोर यातनाएं दी। राह चलते उन पर गोबर फेंका, डराया–धमकाया लेकिन फुले दंपत्ति ने नारी और दलित नारी की शिक्षा का अपना अभियान जारी रखा।

सर सैयद अहमद खान का काम भी इतना ही, ऐसा कठिन था। धार्मिक कट्टरता में जकड़े पिछड़े मुस्लिम समाज में औरतें तो औरतें, बालिकाएं भी घोर पर्दे में लिपटी थी, जिस समाज में पुरुषों की भी बहुसंख्या अशिक्षित थी, उस समाज में अलीगढ़ युनिवर्सिटी की स्थापना करके वहां मुस्लिम लड़कों के साथ ही मुस्लिम लड़कियों को भी अरबी, फारसी, उर्दू के साथ अंग्रेजी में भी शिक्षा की व्यवस्था करना कोई आसान काम नहीं था, जो सर सैयद अहमद ने सफलतापूर्वक किया, तमाम विरोधों और कठिनाइयों का सामना करके।

स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने देश की आम जनता में शिक्षा को लोकप्रिय बनाने, लड़कों के साथ ही लड़कियों के लिए भी शिक्षा को अनिवार्य करने, पाठ्यक्रम को आधुनिक और विश्वस्तरीय बनाने, देश–समाज के अंतिम व्यक्ति तक, वंचित और शोषित समाजों तक शिक्षा को पहुंचाने का जो प्रशंसनय कार्य किया, उसे भुलाया नहीं जा सकता।

शिक्षा के क्षेत्र में इन पांचों का योगदान ऐतिहासिक महत्व का है, क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में किये गये इनके कार्यों ने भारत के धर्म, समाज, साहित्य, कला, राजनीति सभी क्षेत्रों को बहुत गहराई से प्रभावित किया और परतंत्र भारत से लेकर स्वतंत्र भारत तक की उस अत्यंत संवेदनशील अवधि में 'नये भारत के नव निर्माण' में अत्यंत मूल्यवान योगदान दिया। शिक्षा के बिना अस्पृश्यता, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, कुसंस्कार–कुप्रथाएं अंध–विश्वास, अहंकार और आत्म मुग्धता के विष बंधों से छूटना संभव नहीं था और इन तमाम बुराईयों के रहते देश और समाज का पूर्ण विकास भी असंभव था। ऐसे में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, सर सैयद अहमद खान और मौलाना अबुल कलाम आजाद के नामों के बिना भारतीय शिक्षाविदों के महान योगदान–अवदान का प्रसंग कभी पूरा नहीं हो सकता।

– डॉ. तारा परमार

Execution of International treaties and conventions under the ambit of the Constitution of India.

- Upasana Kalgotra
Research Scholar
- Dr. Anshu Jain
Assistant Professor

Introduction

The international law governs the act of State parties at international level by binding them through treaties and conventions. International jurists have opined various views regarding the definition of international law. However, one of the most accepted definitions of international law is given by Prof. Oppenheim. He defines it as, "International Law is the body of rules which are legally binding on States in their intercourse with each other. These rules are primarily those which govern the relations of States, but States are not the only subjects of International Law, International Organisations and to so some extent, individuals maybe the subjects of rights conferred and duties imposed upon International Law." The United Nations is the chief organ which formulates principles and standards for the member States to fulfil the prime objectives behind the establishment of international authority for maintaining peace and security. Therefore, all the State parties of United Nations are obliged to respect the international norms and rules. Ther are two theories for the implementation of international law under the domestic sphere of the State parties: 1) Monistic theory and 2) Dualistic theory. Monistic theory opines that international law and state law are same in nature. It does not need to be incorporated under the municipal law. It becomes the part of State law at the time of its ratification. Whereas the dualistic approach states that international law and municipal law are separate in nature. It cannot be directly applicable into the domestic laws and requires a separate legislation for its application into municipal law. India follows dualistic approach.

Assimilation of International law in Indian legal system

India being the foremost contributor in the formation of United Nations, owes an obligation to abide by these international rules and standards. Law in India, operates through the supreme law of the land i.e. the Constitution of India. This legal document acts as the source for all the other laws enacted by the

legislature of the country. The Constitution of India lays down the framework defining the powers, procedures, functions, duties, and structure of various organs of the government. It also prescribes the rights and duties of the citizen of India. Along with this, the Constitution has also encompassed few of the provisions dealing with the implementation of international law in the domestic law of the country. All the three organs of the government perform the duty to formulate laws based on international treaties and conventions to which India is a member. The executive is empowered under Art. 53 and 73 to exercise the executive power directly or through officers subordinate to him and provides the extent to which this power can be exercised. Whereas legislative power to frame laws based on international treaties and convention lies in Art. 51 and 253 of the Constitution. Art. 51 directs the State to respect international treaties, promote peace and security and maintain just and honourable relations with other nations and Art. 253 empowers the Parliament of India to legislate for giving effect to any treaty, agreement or convention entered by India with other country. Moreover, Parliament is also entrusted with an exclusive power to legislate laws under Art. 246 of the Constitution of India. Clause (1) of this Article states "Notwithstanding anything in clauses (2) and (3), Parliament has exclusive power to make laws with respect to any of the matters enumerated in List I in the Seventh Schedule in this Constitution referred to as the "Union List." Entry 13 and 14 of Union List have exclusively dealt with matters related to international treaties and organisations. Entry 13: Participation in international conferences, associations and other bodies and implementing of decisions made thereat. Entry 14: Entering into treaties and agreements with foreign countries and implementing of treaties, agreements, and conventions with foreign countries.

Role of judiciary in the implementation of international law

Judiciary has also designed remarkable observations to imbibe international norms and standards into the Indian legal system with the help of interpretations. The court has observed plethora of case laws where it has directed the legislature to formulate new laws and amend some of the existing Indian laws. Some of the landmark judgements which has bought major change into the Indian legal system are discussed in this paper also. In the case of

Vishakha v. State of Rajasthan, the court emphasized the recourse to international treaties and agreements in the absence of any domestic law for the protection of women against sexual harassment at workplace by interpreting Art. 14, Art. 15, Art. 19, and Art. 21 of the Constitution of India. Similarly, in Keshavananda Bharti v. State of Kerala, the court stressed the need to take the support of parent international law of a particular municipal law when the language of the municipal law is vague or contrary as the Constitution gives exclusive power to our Parliament to make laws for giving effect to any treaty, convention or agreement with any country or any decisions made at any international conference under Art. 253.

However, ADM Jabalpur v Shivkant Shukla has given a contrary view. Here, the court has recognized international law as merely ethical principles and thus, cannot be applied as domestic law. But one of the dissenting judges has prioritized municipal law over treaty in case of conflict between them and sometimes also stressed to maintain harmony between municipal law and international law where there is possible to make construction between them.

One of the historic judgements pronounced recently by the honourable Supreme court of India in the case of Justice K. S. Puttaswamy (Retd.) and Anr. V. Union of India and Ors, where the Right to privacy enshrined under Universal Declaration of Human Rights (UDHR) is declared as a fundamental right under the Constitution of India. In this case, the court observed that since India is a party to the Universal Declaration of Human Rights and Art. 12 of UDHR deals with the Right to privacy to all the individuals. Thus, India owes a prime obligation to embrace this right as one of the fundamental rights of the Constitution.

Conclusion

International law is concerned with rules and norms to maintain world peace and security and United Nations formulates the rules and principles. All the State parties to the United Nations owes an obligation to recognize these rules and principles and must respect the objectives set forth by the United Nations. Even though, India has played indispensable role in fulfilling these objectives. But international law cannot be implemented directly into the domestic laws of the India as there is no exclusive provision that provides for the

direct application of international law. Despite recognizing number of treaties and conventions, there are still certain laws which requires legislation for its assimilation into domestic laws such as laws against genocide.

AUTHOR (1) - **Upasana Kalgotra**
Research Scholar,
Guru Nanak Dev University, Amritsar.
Contact no. 9797575725

AUTHOR (2) **- Dr. Anshu Jain**
Assistant Professor,
Guru Nanak Dev University, Amritsar

References :

- Dr. H. O. Aggarwal, International law and Human Rights (Central Law Publications, Allahabad, 18th edn., 2011)
- M. P. Jain in the book titled Indian Constitutional Law, 7th Edition, 2014 (Lexis Nexis, Haryana, 7th edn., 2014)
- V. G. Hegde, International Law in the Courts of India" (Asian Yearbook of International Law, Vol. 19, 2013)
- Vivek Sherawat, in "Implementation of international law in Indian legal system" (Florida Journal of International Law, Vol. 31, Issue 1)
- Vishakha v. State of Rajasthan, (1997) 6 SCC 241
- Keshavananda Bharti v. State of Kerala, AIR 1973 SC 1461
- ADM Jabalpur v Shivkant Shukla, AIR 1976 SC 1207
- Justice K. S. Puttaswamy (Retd.) and Anr. V. Union of India and Ors, AIR 2017 SC 4161

A Judicial Metamorphosis : Tracing the Shift from Formal to Substantive Equality in Indian Constitutional Law

- Ritesh Patil

Abstract

Indian constitutional law has experienced a significant shift in its interpretation of the right to equality. Initially rooted in formal equality treating all individuals the same, the judiciary has progressively adopted a more substantive understanding. This evolution reflects a deeper recognition that true equality requires addressing historical and systemic disadvantages. This paper traces this shift, emphasizing landmark judgments that reshaped India's equality jurisprudence, transitioning from formal equality to the modern application of substantive equality, particularly in affirmative action.

Introduction : The Twin Concepts of Equality

The Indian Constitution enshrines equality as a foundational principle, encapsulated in Articles 14, 15 and 16. However, the interpretation of this fundamental right has evolved significantly over time. Initially, Indian constitutional law adhered to a formal understanding of equality, treating all

individuals alike without considering their socio- economic backgrounds. Over time, the judiciary began to embrace a more substantive approach, acknowledging that equal treatment could perpetuate inequality if the underlying societal disparities were not addressed.

Formal equality emphasizes uniform treatment, positing that individuals should be treated identically, regardless of their circumstances. This approach assumes that treating everyone the same leads to equality. However, this often overlooks the deeply entrenched inequalities faced by marginalized groups in society. On the other hand, substantive equality focuses on ensuring that everyone has an equal opportunity to succeed by addressing historical and structural disadvantages. It advocates for measures such as affirmative action to correct imbalances and promote equitable outcomes.

The judicial trajectory from formal equality to substantive equality has become critical in fulfilling the constitutional promise of equality, particularly for marginalized groups such as Scheduled Castes (SCs), Scheduled Tribes (STs), Other Backward Classes (OBCs), persons with disabilities, and gender minorities. This transformation reflects a deeper commitment to achieving not just legal equality, but true social justice.

The Early Years : The Dominance of Formal Equality

In the early decades following India's independence, the Supreme Court's approach to equality largely adhered to the "reasonable classification" test under Article 14, which permitted the state to differentiate between groups of people, as long as the distinction was based on an intelligible differentia (clear difference) and had a rational nexus to the objective of the law. While this test prevented arbitrary discrimination, it still rested on a formal understanding of equality, focusing more on classification than on the substantive effects of the law on disadvantaged groups.

This formal equality model did not account for the structural and historical disadvantages faced by many communities, including caste-based discrimination, economic deprivation, and limited access to resources. Policies like reservations were often seen as exceptions to equality, not as integral to its realization. By focusing only on the legal form of equality, the courts failed to address the deeper inequities embedded in society.

The Turning Point : From Classification to Non - Arbitrariness

The 1970s marked a crucial turning point in the Indian judiciary's understanding of equality. Two landmark judgments significantly influenced this shift toward a more substantive interpretation of equality.

• **E.P. Royappa v. State of Tamil Nadu (1974) :** In this seminal case, the Supreme Court introduced the "doctrine of arbitrariness," fundamentally altering the landscape of Article 14. The Court famously held that "equality is antithetical to arbitrariness." This meant that any state action that was arbitrary, whether legislative or executive, would be considered a violation of the right to equality. This shifted the focus from merely testing the basis of classification to scrutinizing the fairness and reasonableness of the state's actions.

• **Maneka Gandhi v. Union of India (1978) :** This case further expanded the scope of fundamental rights by creating a "golden triangle" linking Articles 14, 19 (right to freedom), and 21 (right to life and personal liberty). The Court ruled that any procedure established by law must be just, fair, and reasonable, implicitly connecting the guarantee of equality under Article 14 to the broader principles of justice and liberty.

These judgments paved the way for a more expansive, substantive interpretation of equality, which considered the broader implications of state actions on marginalized and disadvantaged groups.

Substantive Equality in Action: Affirmative Action and Social Justice

The most prominent application of substantive equality in India has been in the domain of affirmative action. Policies like reservations, which aim to uplift marginalized communities such as Scheduled Castes (SCs), Scheduled Tribes (STs), and Other Backward Classes (OBCs), have been central to the judiciary's evolving approach to equality.

• **Indra Sawhney v. Union of India (1992) :** The Mandal Commission case marked a defining moment in the evolution of substantive equality. The Supreme Court upheld the constitutionality of reservations for OBCs in public employment, emphasizing that affirmative action was a necessary tool to address historical injustices and create a level playing field. The Court ruled that substantive equality required taking proactive measures to uplift disadvantaged groups, recognizing that formal equality alone would not suffice to overcome centuries of systemic discrimination.

• **State of Punjab v. Davinder Singh (2024) :** In a more recent judgment, the Supreme Court upheld the practice of

sub-classifying SCs and STs within their respective groups for the purpose of reservations. This case demonstrated that the Court had moved beyond the idea of treating all SCs and STs as a homogenous group. The majority opinion, led by Chief Justice D.Y. Chandrachud, argued that substantive equality required addressing the disparities within these groups, ensuring that benefits of affirmative action reached those who were most disadvantaged. The ruling reinforced the idea that true equality requires recognizing differences and providing tailored support to those who need it most.

These cases underscore the judiciary's commitment to substantive equality as a means of addressing deep-rooted inequalities. The move towards sub-classifications within the SC/ST categories exemplifies how the Court is embracing a more nuanced, context-sensitive approach to affirmative action, acknowledging that not all disadvantaged individuals or groups are situated equally.

Challenges and the Path Forward

While the shift to substantive equality has been a progressive move, it is not without its challenges. Critics have raised concerns about the potential for affirmative action to be misused or the possibility that policies like reservations may not always achieve their intended goals. The Supreme Court has emphasized that such policies must be based on empirical data and be subject to judicial review to ensure they are effective and not misapplied.

Furthermore, critics argue that the shift to substantive equality requires more than judicial intervention, it demands systemic changes and proactive measures from both the government and society. In particular, addressing the root causes of inequality, such as caste-based discrimination and economic disparity, requires comprehensive social reform and a commitment to long-term change.

Conclusion

The evolution of equality jurisprudence in India reflects a significant transformation in judicial thinking. The shift from formal to substantive equality has been instrumental in addressing the historical injustices and deep-rooted inequalities that continue to affect marginalized communities. Landmark judgments in affirmative action, such as Indra Sawhney and Davinder Singh, show the judiciary's growing commitment to achieving real-world equality through tailored policies and proactive measures.

While challenges remain in the implementation and further refinement

of affirmative action, the trajectory is clear: India's judiciary has embraced a substantive understanding of equality that goes beyond formal sameness to create meaningful opportunities for all citizens, particularly those from disadvantaged backgrounds. This shift is not just about equality before the law but about ensuring equality of opportunity and outcomes, reflecting the diverse realities of Indian society.

- Ritesh Patil (Researcher/Author)
Mob. 7387470578
- Dr. Adhara Deshpande Supervisor/Co-author
Both are from Rashtrasant
Tukadoji Maharaj Nagpur University

References :

1. E.P. Royappa v. State of Tamil Nadu (1974) 4 SCC 3
2. Maneka Gandhi v. Union of India (1978) 1 SCC 248
3. Indra Sawhney v. Union of India (1992) 3 SCC 217 4. State of Punjab v. Davinder Singh (2024)
5. Minerva Mills Ltd. v. Union of India (1980) 3 SCC 625
6. State of Kerala v. N.M. Thomas (1976) 2 SCC 310
7. M.C. Mehta v. Union of India (1987) 1 SCC 395
8. Chandrachud, D. Y. (2024). Equality in the Indian Constitution: From Formal to Substantive Equality.
9. Bhushan, A. (2020). The Indian Constitution and Social Justice.
10. Kothari, R. (1986). Caste in Indian Politics.
11. Constitution of India
12. 103rd Constitutional Amendment (2019)
13. Mandal Commission Report (1980)
14. Galanter, M. (1984). Competing Equalities: Law and the Backward Classes in India.
15. Ramachandran, P. (2005). Substantive Equality and the Indian State: A Study of Affirmative Action Policies.
16. Pancholi, A. (2017). Affirmative Action and Caste-based Reservations in India: An Empirical Review.

डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की आत्मीयता और 'आश्वस्त' के सत्ताईस वर्ष

– **डॉ. रूपचंद गौतम**

जिस समय भोपाल से सी. एस. बंजारी हिंदी पाक्षिक समाचार पत्र **धम्म प्रकाश** का सम्पादन कर रहे थे उस समय डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी जी उज्जैन से बैरवा ज्योति मासिक पत्रिका प्रकाशित कर रहे थे। सरकारी सेवा में होने के कारण पत्रिका में संपादक का नाम उनकी पत्नी इन्दिरा देवी का छपता था । इसके बाद प्रेमी जी के संपादन में 'आश्वस्त' नाम से हिंदी मासिक पत्रिका वर्ष 1983 से प्रकाशित करनी प्रारंभ की। भले ही यह पत्रिका अनियमित थी पर वर्ष 1998 से यह नियमित रूप से पाठकों तक पहुँचने लगी। आगे चल कर पत्रिका के मुखपृष्ठ पर मध्य प्रदेश भारती दलित साहित्य अकादमी, उज्जैन लिखा जाने लगा। तभी से डॉ. तारा परमार का नाम पत्रिका में छपना प्रारंभ हुआ। पत्रिका का आकार वही रहा । कवर पृष्ठ को छोड़ कर पत्रिका की पृष्ठ संख्या 24 रही। डॉ. तारा परमार के संपादन में शोधात्मक दृष्टि विशेष रूप से बढ़ी । एक प्रति 15 रुपये वार्षिक 150 रुपये, आजीवन सदस्यता 1500 रुपये, संरक्षक सदस्यता दस हजार रुपये पत्रिका के प्रत्येक अंक में लिखा जाने लगा । संपादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक ही रहा। 20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन से प्रकाशित होती रही। 'आश्वस्त' सत्यप्रेमी जी द्वारा बोए गए साहित्यिक स्मृति चिह्न हैं। इस स्मृति को बरकरार रखने में डॉ. तारा परमार की भूमिका अतुल्य है। एक दलित महिला के संपादन में सत्ताईस वर्षो से नियमित प्रकाशित होना बहुत बड़ी बात है। हालाँकि डॉ. तारा परमार के सामने कई चुनौतियाँ आयीं पर वह तनिक भी विचलित नहीं हुईं। चुनौतियों का सामना करते हुए वे पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी के विचार को आग तक ले गई।

दलित महापुरुषों की वैचारिक दृष्टि को अग्रेषित करते हुए 'आश्वस्त' सत्ताईस वर्ष की हो चुकी है । आश्वस्त का अगस्त 2001 का अंक स्वतंत्रता दिवस

विशेषांक के रूप में नजर आया। इसके बाद अक्टूबर 2002, महात्मा गांधी, नवम्बर 2002 जवाहरलाल नेहरू, डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी स्मृति विशेषांक, अगस्त 2005 जैसे कई विशेषांक के रूप में 'आश्वस्त' को देखा गया। सितम्बर–दिसम्बर 1999 का अंक अस्मितादर्शी साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश में हुई संगोष्ठी की याद दिलाता है। यह संगोष्ठी 21,22,23 नवम्बर 1999 का उज्जैन में हुई थी। इस संगोष्ठी में देश के समाज चिंतक, लेखक, कवि, पत्रकार, प्रोफेसर एवं शोधार्थी आए थे। उनके आलेखों से यह अंक 104 पृष्ठ का बन गया। डॉ. तारा परमार लिखती हैं, ''डॉ. सत्यप्रेमी ने प्रदेश के दलित साहित्यकारों, कलाकारों, समाज सेवियों, बुद्धिजीवियों एवं राजनेताओं को एकत्र कर भारती दलित साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश की स्थापना की।'' उक्त अंक का संपादकीय डॉ. अम्बेडकर के संपर्क में रहे 'मनीषियों की विचार अभिव्यक्ति' नामक शीर्षक से लिखा गया है ।

पत्रिका में वैचारिक आलेख, शोध आलेख, कहानी, कविता, गजल, पुस्तक–समीक्षा, उपन्यास के अंश एवं गीत दलित समाज में हुए कार्यक्रमों की रपटों को भी बखूबी डॉ. तारा परमार समय–समय पर पत्रिका में स्थान देती रही हैं। दिल्ली से डॉ. संतराम आर्य एवं डॉ. जय प्रकाश कर्दम, जामनगर से नटवरलाल सिलीगुड़ी से डॉ. ओमप्रकाश पांडे, उज्जैन से डॉ. हेमलता गुप्ता, इंदौर से गीता मरकाम, पुणे से मालती शर्मा, जयपुर से गणेश प्रसाद बैरवा, भोपाल से नारायण सिंह वाघवंशी पत्रिका से जुड़े ही नहीं बल्कि रचनात्मक सहयोग भी देते रहे। उक्त नामों को देखते हुए यह महसूस होता है कि 'आश्वस्त' मात्र दलित विमर्श को इतना बल मिला कि 'आश्वस्त' विश्व अनुदान आयोग की सूची में जुड़ गई। इसका परिणाम यहाँ तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि समता एवं भ्रातृत्व भाव को भी अपने में समाहित करती रही। इससे धीरे–धीरे शोधार्थी भी इस पत्रिका से जुड़ने लगे। इसका श्रेय डॉ. तारा परमार को ही जाता है।

डॉ. तारा परमार लिखती हैं, कि भेदभाव शारीरिक व मानसिक श्रम के आधार पर अस्तित्व में आया जिसने आगे चलकर स्वच्छ एवं अस्वच्छ व्यवसाय में सलंग्न लोगों में ऊँच–नींच की भावना को जन्म दिया जिसका परिणाम अस्पृश्यता के रूप में आज भी देखा जा सकता है। शिक्षा के अभाव में दलितों को बनाने का द्विजों ने षड्यंत्र रचा। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर का भारतीय नारी उत्थान में योगदान' नामक शीर्षक के अंतर्गत डॉ. तारा परमार लिखती है, कि 'महारों पर होने वाले अत्याचारों के हदय विदारक चित्रण से डॉ. अम्बेडकर का हदय द्रवित हो गया। वहां के स्त्री–पुरुषों की दयनीय स्थिति को देखकर बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने भारत के दक्षिणी भाग में से ही अपना आंदोलन तीव्र करने का निश्चय किया। यहीं से डॉ. अम्बेडकर ने मृत पशुओं का माँस खाने के लिए इस प्रकार समझाया कि उन्होंने माँस खाना बंद ही नहीं किया बल्कि उनके आंदोलन में बढ़–चढ़ कर भाग लेने लगीं। आज तक ऐसा आंदोलन किसी दलित नेता ने नहीं किया। दबंग उच्च जातियाँ दलित महिलाओं को बेइज्जत करती रहीं और दलित नेता मंच सजाकर चिल्लाते रहे। बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर का नाम भी लिया और दलित आंदोलन को तार–तार भी करते रहे। पर्यावरण संचेतना और शिक्षा नामक शीर्षक के अंतर्गत डॉ. तारा परमार लिखती हैं कि पर्यावरण की बुनियाद रखने वाले तो पंचायती राज के आधारभूत संस्थान हैं, पर पंचायतों से लेकर नगर निगमों तक किसी को भी पर्यावरण सुरक्षा की चिंता नहीं है। पेयजल की लाइनें और जलमल निकास के पाइप गड्ड–मड्ड हो रहे हैं। इससे जाहिर है कि डॉ. तारा परमार केवल दलितों तक ही नहीं सोचती बल्कि दलित से आगे भी सोच रखती हैं।

उन्होंने कहा, कि 'महिलाओं के लिए शिक्षा अनिवार्य हो और शिक्षा के पाठ्यक्रमों में असमानता मूल्याधारित अंशों को हटाया जाना भी आवश्यक है। महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाकर सशक्त किया जाए। कोरोना काल में संपादकों के सामने एक चुनौति भी आई। ऐसे में कोई पत्रिका लगातार

छपती रहे और उसका संपादकीय इतना गंभीर हो कि पाठक को सोचने के लिए विवश करे और शोधार्थियों को पत्रिका खरीदने के लिए लालायित कर दे, यह एक बड़ी बात है। दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए डॉ. तारा परमार ने आश्वस्त की गरिमा को बरकरार रखा। आश्वस्त की गरिमा का ख्याल रखने का मतलब था डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी जी के विचार का ख्याल रखना। संपादकीय को पढने से तो ऐसा ही महसूस किया जा सकता है। डॉ. तारा परमार पत्रिका को संपादकीय में समस्या को रेखोंकित करते–करते सुझाव भी देती नजर आती है। संपादकीय लिखते समय ऐसा लगता है मानो वे एक शोध आलेख लिख रही हैं। संपादकियों में जहाँ गंभीरता है, वहीं विवशता भी है। शालीनता से अपनी बात कहना डॉ. तारा परमार के लेखन की विशेषता ही कही जा सकती है।

गजल के रूप में अपने विचारों को साझा करते हुए वे लिखते है, 'बहुत कुछ छोड़के', 'जगार' के संपादक भरत सिंह बेचैन की अभिव्यक्ति गजल के रूप में 'आश्वस्त' में पढ़ने को मिलती।

साहित्य न समझना, ये शांतिदूत भी है/मेरी जान ग़ज़लों को बस दिल में बैठाले रखना कितने असहाय, रखना/हमारे बहुमुखी कर्मों को समझना बहुत है मुश्किल/मेरे इतिहास को कई पीढ़ी तक पाले रखना/

अनाथों को बढ़ाया है मैंने और किए हैं क्या मैंने, बाद बोटातले रखना मैं बाद अपने वक्त को लाऊँगा है। इतना दम मुझमे आप सामने बस धैर्य के प्याले रखना अभी से खतके 'जय बेचैन बोलने वालों अब नहीं इस अपने मुँह पर तुम ताले रखना। डॉ. भरत सिंह बेचैन दलित पत्रकारिता के हस्ताक्षर हैं। पत्रकारिता के अलावा कविता पर भी इनकी अच्छी खासी पकड़ है।

विश्वविद्यालय से ए क्रिटिकल एस्टीमेट ऑफ द सोशल फिलासॉफी ऑफी 'डॉ. अम्बेडकर मिशन पत्रिका' पर प्रथम शोध करने वाले डॉ. डी. आर. जाटव दलित पत्रकारिता पर प्रथम शोध करने वाले डॉ. गंगाधर पानतावणे, दलित पत्र–पत्रिकाओं में लिखने वाले बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के समकालीन आयु नेताम सीताराम बंजारी, सोहनलाल शास्त्री, शंकरानंद शास्त्री के विचारों से डॉ. तारा परमार ने संपादकीय को अन्तिम रूप दिया है। अंक में सभी लेख शोधपूर्ण हैं। उक्त अंक में मेरठ के सत्य प्रकाश मंडला उत्तर प्रदेश के डॉ. शरद नारायण खरे, दिल्ली के संतराम आर्य तथा शेखर पवार, देहरादून के डॉ. दिनेश चमोला, गोरखपुर की श्रीमती शशीकांता बौद्ध, गुवाहटी के देवेशचंद्र दास की कविताओं को प्रमुखता के साथ स्थान दिया है। वरिष्ठ लेखक एवं कवि डॉ. सुरेश उजाला की कविताओं को भी इस अंक में पढ़ा जा सकता है। कविता लिखते–लिखते विपिन बिहारी कथाकार बन गए वहीं डॉ. पूरन सिंह लघुकथाकार के रूप में आज समुचे हिंदी जगत में जाने जाते हैं। कार्यक्रमों की कवरेज करते–करते में पत्रकार से प्रोफेसर बना, और फिर बना एक अध्येयता। पत्रिका को डॉ. जय प्रकाश कर्दम का मार्ग दर्शन सदैव मिलता रहा। कभी–कभी अम्बेडकर विज्ञान पत्रिका के संपादक बुद्ध शरण हंस के विचारों को भी पत्रिका में भरपूर स्थान दिया गया। कालीचरन स्नेही कभी प्रतिक्रिया के रूप में तो कभी कवि के रूप से पत्रिका में दिखाई पड़े।

दलित वैचारिकी को गंतव्य स्थान तक पहुँचाने में दलित पत्र–पत्रिकाओं का विशेष स्थान रहा है। जो सौ रुपये की किताब खरीद कर हासिल की जाती थी वह सूचना दस रुपये की पत्रिका खरीद कर हासिल की जाती रही। इन्होंने युवाओं को कलम पकड़नी सिखाई और शोध दृष्टि भी लघु पत्रिकाओं की महिमा दशति हुए डॉ. तारिक असलम लिखते हैं, कि साहित्य सबंधन में लघु पत्रिकाओं की जो भूमिका है वह बड़ी–बड़ी व्यावसायिक पत्रिकाओं की भी नहीं है। कई बड़े लेखक पारिश्रमिक के अभाव में लघु पत्रिकाओं को रचनात्मक सहयोग नहीं देते किन्तु कई बार लघु पत्रिकाओं में जैसी वैचारिक सामग्री होती है वह चिकनी, रंग–बिरंगी और महँगी पत्रिकाओं में नहीं होती। यह बात सही है। अधिकांश दलित लेखकों में ऐसा ही मैंने महसूस किया।

जिन लोगों ने लघु पत्रिकाओं के दम पर पी–एच. डी. कर ली बाद में इनसे विमुख हो गए। सहायक प्रोफसर से प्रोफेसर तक बन गए। पद की गरिमा के कारण इन्हें व्यावसायिक पत्रिकाओं में स्थान भी मिलने लगा। दलित इतिहास की कमी को भी रेखांकित करते–करते स्वयं अपना इतिहास बनाने में लग गए। दलित आंदोलन इनके लिए दोयम दर्जे का विषम बन गया। जिस तरह से दलित प्रोफेसर दलित साहित्य को पाठ्यक्रम में लगाने की पहल की उस तरह से दलित पत्रकारिता को पाठ्यक्रम में लगने की नहीं की। इस कारण आज भी दलित एवं आदिवासी पत्रकारिता पत्रकारिता के पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं बन पाई है जबकि दलित पत्र–पत्रिकाएँ दलित आंदोलन के साथ–साथ दलित साहित्य की संवाहक भी रही हैं। दलित उत्पीड़न के साथ–साथ दलित साहित्य व संस्कृति के सवाल बखूबी से दलित पत्र–पत्रिकाओं में आएँ हैं। यह काम तभी संभव हो सका जब पत्र–पत्रिकाओं में 99 प्रतिशत संपादक गैर अकादमिक रहे।

राष्ट्रीय डॉ. अम्बेडकर साहित्यकार आदित्य सम्मान, संत कबीर काव्यरत्न सम्मान, डॉ. अम्बेडकर संपादक सम्मान, विरसा मुंडा क्रांति सम्मान, स्वामी अछूतानंद समाज सेवा सम्मान, नारायण गुरू साहित्य समान, महात्मा ज्योतिराव फुले, संत रैदास साहित्य रत्न सम्मान, एकलव्य बाल साहित्य रत्न सम्मान, सावित्री बाई फुले साहित्य सम्मान, रमाबाई अम्बेडकर समाज सेवा सम्मान, वीरांगना झलकारी बाई समाज रत्न सम्मान आश्वस्त हिंदी गरिमा सम्मान, राष्ट्रीय सृजन सेवा रत्न सम्मान के रूप में हिंदी मासिक 'आश्वस्त' ने लोगों को जोड़ा। 'आश्वस्त' पत्रिका अकादमी की दूसरी उपलब्धि कही जा सकती है। यही उपलब्धि पत्रिका के सामाजिक सरोकारों की पड़ताल कराती है। पत्रिका अभी भी अपने जोश–खरोश के साथ नियमित प्रकाशित हो रही है। प्रिन्ट माध्यमों में पाठक का कोना अवश्य माना गया है, पर 'आश्वस्त' में पाठक और नहीं है। आजकल तो यूट्यूब चैनल पर भी कमेंट्स बॉक्स होता है। पत्रिका में कार्यक्रमों का भी कोई नियमित कॉलम नहीं है फिर भी बयान यू–ट्यूब चैनल साक्षी गौतम की कवरेजों को यथासंभव स्थान दिया जाता है। और पत्रिका को मध्यप्रदेश सरकार का विज्ञापन भी समय–समय पर मिलता रहा है।

– डॉ. रूपचंद गौतम
288/9, मंडोली, दिल्ली–110093
मोबा. 9868414275

संदर्भ :
1. आश्वस्त, जनवरी 2005, संपादकीय
2. वही, सितम्बर दिसम्बर 1999, संपादकीय
3. वही, जनवरी 2008, संपादकीय
4. वही, जुलाई 2004, संपादकीय
5. वही, जनवरी 2003, संपादकीय
6. वही, मई 2008, पृष्ठ–15

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर – आधुनिक भारत के निर्माता

– प्रा. डॉ वसंत आबासाहेब खरात

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर एक महान देशभक्त, सामाजिक विचारक, राजनीतिक सुधारक और प्रगतिशील विचारों के दार्शनिक लेखक थे। वे उन सभी राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के पक्षधर थे जिनसे मानव प्रगति और खुशहाली में वृद्धि हुई। वे भारत के संविधान की आत्मा थे। उन्होंने शोषित और वंचित वर्गों के लिए संघर्ष किया। आधुनिक भारत के अग्रणी निर्माताओं में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर भारतीय संविधान के निर्माता और आधुनिक भारत के निर्माण में एक प्रमुख व्यक्ति माने जाते हैं। वे एक दूरदर्शी नेता, समाज सुधारक और सामाजिक न्याय के प्रणेता थे, विशेष रूप से वंचितों और उत्पीड़ितों के लिए। उनका योगदान संविधान से परे, एक अर्थशास्त्री, न्यायविद और

राजनीतिक नेता के रूप में उनके कार्यों का विस्तार हुआ है। डॉ. अम्बेडकर को सामाजिक न्याय के प्रणेता के रूप में व्यापक रूप से सम्मानित किया जाता है।

1. स्वतंत्रता संग्राम में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका :

डॉ. अम्बेडकर सच्चे अर्थों में एक स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने न केवल भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराने का स्वप्न देखा, बल्कि भारत को एक ऐसे देश में बदलने का सपना देखा जहाँ स्वतंत्रता सभी के लिए सार्थक हो। उन्होंने अपना जीवन दलितों के उत्थान के लिए समर्पित कर दिया। डॉ. अम्बेडकर चाहते थे कि समाज सुधारक समाज में व्याप्त घोर असमानताओं से लड़ने के लिए जनमत तैयार करें। यह अत्यंत दुखद है कि अतीत और वर्तमान दोनों में मीडिया ने डॉ. अम्बेडकर को मुख्यतः हिंदू धर्म के कटु आलोचक और एक महान सामाजिक विद्रोही के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के बहुमुखी व्यक्तित्व की उपेक्षा की है।

डॉ. अम्बेडकर एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने वास्तव में सभी भारतीयों को सभी तानाशाहों से आजादी दिलाने के लिए संघर्ष किया। भविष्य में एक 'स्वतंत्र' देश बनने वाले देश में महिलाओं और वंचित जातियों के अधिकारों पर विशेष ध्यान दिया। स्वतंत्रता संघर्ष में, डॉ. अम्बेडकर ने गरीबों और वंचितों, गंभीर अत्याचारों को दलित पीड़ितों, मानसिक रूप से कुचले और टूटे हुए लोगों, महिलाओं और विधवाओं, श्रमिकों, अनाथों और विकलांगों के दिलों में एक विशेष स्थान अर्जित किया।

मुख्यधारा के गांधीवादी आंदोलनों का हिस्सा न होते हुए भी, अम्बेडकर ने स्वतंत्रता आंदोलन में समानांतर और शक्तिशाली भूमिका निभाई, जिसमें उन्होंने दलितों के सशक्तिकरण, कानूनी अधिकारों और संरचनात्मक सुधार पर ध्यान केंद्रित किया। महाड जल सत्याग्रह (1927), कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन (1930) और गोलमेज सम्मेलनों में उनके प्रतिनिधित्व के प्रयास राजनीतिक स्वतंत्रता के प्रति अधिकार–आधारित दृष्टिकोण को दर्शाते हैं, जो मुख्यधारा के राष्ट्रवाद से अलग लेकिन पूरक है। विद्वान इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि अम्बेडकर का संघर्ष उपनिवेशवाद से परे जाति, पदानुक्रम और सामाजिक–आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए था।

2. भारतीय संविधान के मुख्य निर्माता :

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान की प्रारूप समिति की अध्यक्षता की, जिसने एक लोकतांत्रिक और समतावादी समाज की नींव रखी। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि संविधान में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांत निहित हों, और सभी नागरिकों के लिए मौलिक अधिकारों और सामाजिक न्याय की गारंटी हो। उन्होंने हाशिए पर पड़े समुदायों के लिए मौलिक अधिकारों, सामाजिक न्याय के सिद्धांतों और सुरक्षा उपायों को इसमें शामिल किया। यह संविधान एक लोकतांत्रिक, समतावादी और समावेशी समाज के उनके दृष्टिकोण को दर्शाता है।

3. सामाजिक न्याय के महान योद्धा :

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर का उल्लेख सामाजिक न्याय के महान योद्धा के रूप में किया जा सकता है। अस्पृश्यता की रुढ़ि अन्याय कारक है। वह समाप्त हो जानी चाहिए। समता के लिए संवैधानिक और सामाजिक व्यवस्था होनी चाहिए। जातिभेद और अस्पृश्यता के पीछे धर्म मान्यता खड़ी करना अधर्म है। उसे समाप्त करना चाहिए। ऐसे सारे विषय सामाजिक न्याय शब्द में निहित है। सामाजिक न्याय और राष्ट्रीयता एक–दूसरे के पूरक है। इसलिए पूज्य डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर आधुनिक भारतीय राष्ट्रीयता के शिल्पकार के रूप में हैं। डॉ. बाबासाहेब मानते थे, कि एक राष्ट्र को खड़ा होने के लिए संस्कृति के साथ–साथ सांस्कृतिक एकता और सामाजिक एकता का भी बहुत बड़ा महत्व है। एक दलित परिवार में जन्मे डॉ.

अम्बेडकर को जीवन भर गंभीर सामाजिक भेदभाव और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा। उन्होंने अपना जीवन जाति– आधारित भेदभाव के खिलाफ लड़ने और हाशिए पर पड़े समुदायों के अधिकारों की वकालत करने के लिए समर्पित कर दिया। डॉ. बाबासाहेब ने बचपन से ही देश में अस्पृश्यता, गुलामी और अपमान की तीक्ष्ण पीड़ाएँ झेली थीं। उन्होंने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के महत्व को पहचाना था। वे आत्म–विकास के लिए स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता के लिए समानता और आत्म–सम्मान प्रदान करने वाला बंधुत्व चाहते थे। उन्होंने अपना जीवन जातिगत भेदभाव और सामाजिक असमानता के खिलाफ लड़ाई के लिए समर्पित कर दिया। उनके प्रयासों से महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार हुए और एकाधिक न्यायसंगत एवं समतामूलक समाज का मार्ग प्रशस्त हुआ।

4. महिला अधिकारों के समर्थक :

डॉ. अम्बेडकर महिला अधिकारों और सशक्तिकरण के प्रबल समर्थक थे। वे लैंगिक समानता में विश्वास करते थे और जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए काम करते थे। हिंदू कोड बिल में उन्होंने व्यक्तिगत कानूनों में सुधार और लैंगिक न्याय को बढ़ावा देने का प्रयास किया, हालाँकि उस समय इसे राजनीतिक प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। डॉ. अम्बेडकर महिलाओं के हितों व उनके अधिकारों के प्रति एक ऐसे संवेदनशील योद्धा एवं पुरोधा थे, जिन्होंने स्त्री से जुड़े लगभग सभी क्षेत्रों– शिक्षा, विवाह, पुनर्विवाह, परिवार नियोजन, संपति आदि को अपने चिंतन का हिस्सा बनाकर नारी मुक्ति का आह्वान किया। प्रसूति लाभ के मुद्दे पर वर्ष 1928 में डॉ. अम्बेडकर ने आवाज बुलंद कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। उनके अथक प्रयास के परिणामस्वरुप ही सरकार को प्रसव प्रसुविधा अधिनियम, 1961 पारित करना पड़ा, जिसने रोजगार के लगभग सभी क्षेत्रों में महिलाओं के शोषण का अंत कर उनके सशक्तिकरण का मार्ग प्रशस्त किया।

5. सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा :

डॉ. अम्बेडकर का जीवन और कार्य लाखों लोगों को सम्मान और न्याय की खोज में प्रेरित करते रहते हैं। शिक्षा, साहस और मानवीय गरिमा के प्रति उनकी अटूट प्रतिबद्धता पर उनका जोर आज भी गूंजता है। संक्षेप में, भारत के सामाजिक, राजनीतिक और संवैधानिक परिदृश्य पर डॉ. अम्बेडकर के गहरे प्रभाव ने उन्हें आधुनिक भारत के निर्माता की उपाधि दिलाई है। उन्होंने एकाधिक न्यायसंगत, समतामूलक और लोकतांत्रिक राष्ट्र की नींव रखी।

6. अर्थशास्त्री :

डॉ. अम्बेडकर का योगदान अर्थशास्त्र तक, विशेष रूप से मौद्रिक नीति, मुद्रास्फीति नियंत्रण और श्रमिक कल्याण के क्षेत्रों में फैला हुआ था। उन्होंने श्रमिकों के अधिकारों की भी वकालत की और श्रम कानूनों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों को शामिल करके आर्थिक लोकतंत्र के उद्देश्य को विस्तार से समझाया। उन्होंने कहा था कि, यह सरकार की जिम्मेदारी है कि, वह लोगों के आर्थिक जीवन की योजना उच्चतम उत्पादक क्षमता को ध्यान में रखते हुए बनाए और आर्थिक नियोजन इस तरह करे कि निजी उत्पादकों के लिए कोई बाधा न आए और धन का समान वितरण हो। उनके आर्थिक विचार, नीतियां और कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है और भारत में आज भी उपयोगी है। राजस्व पर उनके विचार उनकी देशभक्ति और राष्ट्रवाद को दर्शाते हैं। देश की कृषि और उद्योग का विकास क्यों नहीं हुआ इस पर उनका विश्लेषण आज भी उपयोगी है। उनके शोध के माध्यम से ही देश में वित्त आयोग की स्थापना हुई और उनकी सिफारिश को लागू किया गया। **रुपए की समस्या** पर उनके शोध के माध्यम से ही भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना हुई

और हमने अपरिवर्तनीय कागजी मुद्रा प्रणाली को अपनाया। उनका यह विचार की कृषि विकास स्वतंत्र नहीं हो सकता उसे औद्योगिक विकास से जोड़ना आवश्यक है आज भी उपयोगी है।

7. शिक्षा संबंधी विचार :

शिक्षा के बारे में उनका दृष्टिकोण रचनात्मक था। शिक्षा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रांति की नींव है, यह डॉ. बाबासाहेब का मत था। भारत में दलितों और महिलाओं की दुर्दशा का रामबाण इलाज शिक्षा है, वे इस बात के प्रति आश्वस्त थे। लोगों को सक्रिय बनाना, अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष करना और उस लक्ष्य के लिए संगठित होना ही क्रांति का मार्ग प्रशस्त करने का मार्ग है। उनकी जीवन शिक्षा का मुख्य आदर्श यही था कि सभी को शिक्षा का अवसर मिले और वे इस अवसर का सदुपयोग करें।

शिक्षा के महत्व को समझाते हुए डॉ. आंबेडकर कहते हैं कि आत्म–सम्मान, आत्म–निर्भरता और आत्म–सुधार, प्रभावी शिक्षा के लक्ष्य हैं। शिक्षा से ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अपने व्यक्तित्व का बोध, आत्मविश्वास, आत्म–सम्मान और गरिमा विकसित करने की क्षमता विकसित करने के लिए शिक्षा आवश्यक है यह डॉ. बाबासाहेब का मत था । इसके लिए वे सभी के लिए शिक्षा और सभी के लिए विकास की स्वतंत्रता चाहते थे। उनके अनुसार, 'शिक्षा ही राष्ट्रीय आदर्श वाक्य है', 'शिक्षा का अर्थ है परिवर्तन' यह उनकी शैक्षिक विचारधारा का मूल सूत्र है। उनका आदर्श वाक्य था, 'शिक्षा सामाजिक क्रांति का सबसे प्रभावी साधन है।' इसलिए उन्होंने सभी से शिक्षा प्राप्त करने का आग्रह किया।

डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है – ''शिक्षा वह है जो व्यक्ति को चेतना प्रदान करे।'' ''उनका मत था कि शिक्षा के बिना व्यक्ति पशु मात्र है। यदि भूख के कारण शरीर का पोषण कम हो जाए, तो व्यक्ति दुर्बल हो जाता है और उसका जीवनकाल छोटा हो जाता है, और यदि वह शिक्षा के अभाव में बुद्धिहीन रह जाता है, तो वह जीवन भर दूसरों का गुलाम बनकर रह जाता है।''

8. दूरदर्शी नेता और सुधारक :

डॉ. अंबेडकर एक विपुल लेखक, विचारक और वक्ता थे, जिन्होंने लाखों लोगों को सामाजिक न्याय और समानता के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया। 'जाति उन्मूलन' का उनका आह्वान सामाजिक असमानता के विरुद्ध संघर्ष में एक सशक्त संदेश है। डॉ. आंबेडकर का एक हाशिए की पृष्ठभूमि से भारतीय संविधान के मुख्य निर्माता बनने तक का सफर उनके साहस, दृढ़ संकल्प और बौद्धिक प्रतिभा का प्रमाण है। वे अन्याय और भेदभाव के विरुद्ध संघर्षरत पीढ़ियों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

– प्रा. डॉ. वसंत आबासाहेब खरात
राजनीति विज्ञान विभाग
संगमनेर नगरपालिका कला, दा. ज. मालपाणी वाणिज्य एवं ब.ना. सारडा विज्ञान महाविद्यालय, संगमनेर.
मो. **98500 60645**

संदर्भ :

1. डॉ. वा. ना. कुबेर, आंबेडकररू विचारमंथन, केसरी प्रकाशन, पुणे 1972
2. प्रदीप गायकवाड, (संपा.) डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, खंड 1 ते 8,
3. श्री गोविंद तळवलकर– डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर यांचे आर्थिक विचार
4. डॉ. भालचंद्र मुणगेकर, भारतातील आर्थिक सुधारणा आणि दलित– एक आंबेडकरी दृष्टिकोन
5. राम गोपाल सिंह – डॉ आंबेडकर : समाज वैज्ञानिक
6. डॉ. अरविंद शृंगारपुरे – समग्र भारतीय व पाश्चात्य राजकीय विचारवंत

"Echoes of Equality: Ambedkar's Literary Fire"

- DR. SURENDER SINGH
Associate Professor of English

Abstract

Dr. B.R. Ambedkar is widely revered as the chief architect of the Indian Constitution and a pioneering advocate for Dalit and women's rights. However, his literary and philosophical contributions have often been overshadowed by his political legacy. This paper seeks to excavate the lesser-known dimensions of Ambedkar's thought, which traverse ethics, epistemology, social justice, political realism, and metaphysics. His work reflects a unique confluence of indigenous experience and global intellectual traditions. Drawing from Buddhism, liberalism, Marxism, and pragmatism, Ambedkar offered a powerful critique of caste and a compelling vision for human dignity and rational social order. Through close readings of his major and marginal texts, this paper repositions Ambedkar as a major philosopher of liberation and modernity.

Keywords : Ambedkar, philosophy, ethics, Buddhism, rationality, justice, caste, epistemology, metaphysics, social democracy

Introduction

"Ambedkar's legacy is not a relic but a roadmap—a guide for radical social transformation. (1) **- Suraj Yengde**

Dr. B. R. Ambedkar remains a towering figure in Indian political history, yet his philosophical insights are rarely afforded the serious academic attention they merit. His intellectual legacy encompasses not just constitutional design and legal advocacy, but a deep and original engagement with fundamental philosophical questions. As Ananya Vajpeyi observes, "Ambedkar's intellectual energy was equally moral, political, and philosophical, though rarely acknowledged as such." (2) This paper aims to illuminate the depth of Ambedkar's philosophical inquiry, highlighting his contributions to epistemology, ethics, political theory, and metaphysics through an analysis of key texts and lesser-known writings.

I. Epistemic Justice and the Critique of Brahmanical Knowledge

Ambedkar viewed caste not merely as a social structure but as a system of epistemological control. "Caste is not

merely a division of labor. It is a division of laborers,"(3) he declared, emphasizing how caste constructs and restricts knowledge production. Influenced by John Dewey's pragmatism and Buddhist rationality, Ambedkar rejected the epistemic authority of the Shastras: "The real remedy for breaking caste is not to kill Brahmins, but to destroy the belief in the sanctity of the Shastras." (4)

His notion of epistemic justice is grounded in lived experience, challenging the authority of inherited tradition. Ambedkar's work prefigures contemporary critiques of epistemic injustice, particularly in the way knowledge systems marginalize certain voices and communities.

II. Ethics of Self-Respect and Human Dignity

Central to Ambedkar's moral philosophy is the concept of self-respect, drawn from the Buddhist tenet atta dipa bhava (be a light unto yourself). He contended that “Lost rights are never regained by appeals to the conscience of the usurpers, but by relentless struggle." (5) His ethics are rooted in struggle, dignity, and the imperative to recognize each individual's intrinsic worth.

For Ambedkar, justice was not a procedural principle but an ethical imperative: "Justice is another name for liberty, equality and fraternity." (6) He aligned these values with both Enlightenment ideals and Buddhist thought, rejecting utilitarianism in favor of a moral realism grounded in equality.

III. Political Realism and Democratic Ethics

Ambedkar redefined democracy as a moral and social ethos: "Democracy is not a form of government, but a form of associated living." (7) This vision of democracy is inseparable from mutual respect and shared responsibility. He warned against the dangers of populism and uncritical thinking: “The real enemy of democracy is the gramophone mind." (8)

In contrast to liberal theories that divorce ethics from politics, Ambedkar's realism emphasized the moral foundations of governance. Democracy, for him, must be grounded in justice and moral deliberation, not mere majoritarian rule.

IV. Buddhism as Rational Religion

Ambedkar's embrace of Buddhism represented not a renunciation of politics, but its culmination in ethical-spiritual form. He emphasized that “The Buddha was against priesthood, rituals, and the supernatural," (9) positioning the

Buddha as a rational moral reformer.

In 'The Buddha and His Dhamma', Ambedkar recast Buddhism as a philosophy of human liberation: "Religion is for man and not man for religion." (10) His interpretation of Buddhism sought to recover its anti-authoritarian, egalitarian core, making it a viable alternative to both Brahmanism and dogmatic Marxism.

V. Metaphysics of Social Interdependence

Ambedkar's metaphysical vision centered on the idea of interdependence, drawn from the Buddhist concept of pratityasamutpāda (dependent origination). Social structures, he argued, are historically conditioned and mutable. "Society is always composed of the classes whose interests are divergent," he wrote; thus, justice is not harmony but a dynamic balancing of interests. (11) His rejection of metaphysical determinism in favor of historical contingency makes his thought highly relevant for contemporary critical theory.

VI. Feminist and Intersectional Philosophy

Ambedkar's advocacy for women's rights remains a largely unexplored aspect of his philosophy. In his seminal essay "The Rise and Fall of Hindu Women," he argued that "The progress of any society is measured by the degree of progress which women have achieved." (12) His critique of endogamy and the Manusmriti laid the groundwork for an intersectional critique of caste and patriarchy. His feminism was not ancillary but central to his broader vision of human dignity and justice.

He meticulously traces the genesis of gender oppression to the Manusmriti and Brahmanical patriarchy, exposing the deliberate regression from the rights afforded to women during the Buddhist period. He asserts, "The position of women under the Vedas and Smritis is that of a slave... subject to male control throughout her life." (13) By historicizing the legal and religious codification of subjugation, Ambedkar transcends liberal feminist formulations and instead proposes a radical restructuring of cultural and epistemic hierarchies. His insistence on the indivisibility of caste and gender marks him as a theorist of what would later be conceptualized as intersectionality—a mode of analysis attentive to the simultaneity of multiple axes of domination.

Ambedkar's thought inaugurates an indigenous intersectional framework

long before the term entered Western academic discourse through Kimberlé Crenshaw. In his 1916 Columbia thesis "Castes in India: Their Mechanism, Genesis and Development", he prefigures an analysis of what might now be called "interlocking systems of oppression." He argues, "The superimposition of endogamy over exogamy... has preserved the caste system" (14), highlighting how patriarchal control over women's sexuality underpins the entire caste order. Furthermore, his support for the Hindu Code Bill was not merely legal reformism but an effort to dismantle the juridico-cultural apparatus that rendered Dalit and non-Brahmin women doubly subaltern. As Sharmila Rege articulates, "Ambedkar placed women at the center of the caste question". (15) In this regard, Ambedkar should be read as an architect of a subaltern feminist hermeneutics_deeply attentive to how caste, class, and gender co-constitute marginality in colonial and postcolonial India.

VII. Comparative Dialogues with Western Thinkers

Ambedkar engaged deeply with Western philosophy. While he appreciated Dewey, Roosevelt, and Mill, he also critiqued Hegel, Plato, and Marx. In Buddha or Karl Marx, he concluded: "Marx's dictatorship of the proletariat leads to loss of liberty, while Buddha's way is liberty, equality and fraternity without violence." (16)

This comparative method allowed Ambedkar to develop a dialogical philosophy that synthesized Eastern and Western paradigms, offering an alternative to both capitalist liberalism and Marxist authoritarianism.

Conclusion : Toward a Global Philosophy of Liberation

Ambedkar's philosophical work constitutes a coherent and original system rooted in ethical realism, epistemic justice, and rational humanism. His legacy is not merely political or juridical but deeply philosophical. Omvedt positions Ambedkar's movement as multifaceted, challenging social norms and dominant ideologies as remarked, "Ambedkar's movement was not only a political struggle but a cultural and ideological revolution." (17) As he urged: "My final word of advice to you is educate, agitate, organize—have faith in yourself." (18) Recognizing Ambedkar's place in global philosophy is essential for any serious engagement with justice, freedom, and

human dignity in the modern world. These beautiful lines speak volumes of Babasaheb Ambedkar's echoes of equality and literary fire:

"He rose from dust, not just to speak,
But to lift the silenced, to raise the weak.
In pages of law, in echoes of right,
Ambedkar burned caste with wisdom's light."

- DR. SURENDER SINGH
Associate Professor of English,
Government College Birohar (Jhajjar)
Haryana, Affiliated to MDU, Rohtak
Contact: 9416812691

References :

1. Suraj Yengde, Caste Matters, Viking, 2019, p. 211
2. Vajpeyi, Ananya. Righteous Republic: The Political Foundations of Modern India. Harvard University Press, 2012, p. 199.
3. Ambedkar, B. R. “Annihilation of Caste". 1936. Annotated Critical Edition, Navayana, 2014, p. 36.
4. Ibid, p. 23.
5. Ambedkar, B. R. What Congress and Gandhi Have Done to the Untouchables. Thacker & Co., 1945, p. 150.
6. Ambedkar, B. R. States and Minorities. Government of India Press, 1947, p. 13.
7. Ambedkar, B. R. Democracy and the Ideal of Social Justice. Writings and Speeches Vol. I, Government of Maharashtra, 1979, p. 101.
8. Ibid, p. 104.
9. Ambedkar, B. R. The Buddha and His Dhamma". Siddhartha College Publications, 1957, p. 87.
10. Ibid, p. 92.
11. Ambedkar, B. R. "Philosophy of Hinduism. Writings and Speeches" Vol. III, Government of Maharashtra, 1987, p. 74.
12. Ibid, p. 474.
13. Ibid, p. 323.
14. Ibid, p. 9.
15. Rege, Sharmila "Against the Madness of Manu", 2003, p. 20)
16. Ambedkar, B. R. Buddha or Karl Marx. 1956, p. 24.
17. Omvedt, Gail. Dalits and the Democratic Revolution. Sage, 1994, p. 153.
18. Ambedkar, B. R. Speech at All-India Depressed Classes Conference, Nagpur, 1930, p. 3.

सोशल मीडिया पर दलित उत्पीड़न : डिजिटल स्वतंत्रता बनाम जातिगत नफरत

– **राधा सिंह**[1] (शोधार्थी)
– **डॉ. मिली सिंह**[2] (सहायक प्राध्यापक)

यह शोध पत्र डिजिटल युग में सोशल मीडिया के माध्यम से दलित समुदाय के प्रति हो रहे उत्पीड़न, घृणा भाषण, ट्रोलिंग एवं जातिगत भेदभाव के स्वरूपों का विश्लेषण करता है। बीते एक दशक में सोशल मीडिया दलित समुदाय के लिए अभिव्यक्ति और अधिकारों की लड़ाई लड़ने का सशक्त माध्यम बना है, वहीं दूसरी ओर यह मंच दलित–विरोधी मानसिकता को भी खुलकर सामने लाने का एक मंच बन गया है। इस शोध में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि कैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर दलित समाज के खिलाफ नफरत फैलाने वाले कंटेंट बढ़ रहे हैं और इन प्लेटफॉर्म्स की मॉडरेशन नीतियाँ कितनी प्रभावी हैं। बर्तमान कानूनी व्यवस्थाएँ जैसे SC/ST अत्याचार निवारण अधिनियम, आईटी अधिनियम आदि इस नए प्रकार के डिजिटल अपराध से निपटने में कितनी सक्षम हैं। कुछ वास्तविक घटनाओं का उदाहरण देकर यह स्पष्ट किया गया है कि कैसे साइबर बुलीइंग, जातिगत अपमान, ऑनलाइन धमकी और सामाजिक बहिष्कार के माध्यम से डिजिटल दुनिया में भी एक असमान माहौल तैयार किया जा रहा है। शोध का उद्देश्य न केवल समस्या की पहचान करना है, बल्कि सुझाव भी प्रस्तुत करना है, जैसे कि सोशल मीडिया कंपनियों की जवाबदेही तय करना, साइबर कानूनों में संशोधन, डिजिटल साक्षरता का विस्तार, और दलित समुदाय के लिए एक सुरक्षित ऑनलाइन स्पेस सुनिश्चित करना।

की–वर्ड्स – सोशल मीडिया, दलित उत्पीड़न, डिजिटल स्वतंत्रता, साइबर अपराध, घृणा भाषण, ट्रोलिंग

प्रस्तावना

भारतीय समाज एक जटिल सामाजिक संरचना से

युक्त है, जिसमें जाति व्यवस्था एक प्रमुख तत्व रही है। सदियों से चली आ रही इस व्यवस्था ने समाज को ऊँच–नीच, शुद्ध–अशुद्ध, स्पर्श–अस्पर्श जैसे वर्गों में बाँट दिया है। यद्यपि भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता और बंधुता जैसे मूल अधिकारों की स्थापना करके इस असमानता को मिटाने का प्रयास किया, फिर भी जातिगत भेदभाव और दलितों पर होने वाला शोषण आज भी व्याप्त है। यह भेदभाव अब केवल शारीरिक या सामाजिक स्तर तक सीमित नहीं रहा, बल्कि डिजिटल दुनिया, विशेषकर सोशल मीडिया, में भी अपने विकराल रूप में सामने आ रहा है।

21वीं सदी के डिजिटल युग में सोशल मीडिया ने संवाद, विचार, अभिव्यक्ति और विरोध के नए रास्ते खोले हैं। यह मंच विशेषकर वंचित वर्गों जैसे कि दलित, आदिवासी और पिछड़े समुदायों – के लिए अपनी आवाज बुलंद करने और समाज में व्याप्त असमानताओं को उजागर करने का माध्यम बनकर उभरे हैं। हाल के वर्षों में दलित समुदाय के अनेक युवा, छात्र, शिक्षाविद, लेखक और एक्टिविस्ट सोशल मीडिया पर खुलकर अपने अधिकारों, अनुभवों और संघर्षों को साझा कर रहे हैं। #DalitLivesMatter #JaiBhim] #Ambedkarite जैसे हैशटैग्स के माध्यम से सामाजिक चेतना और राजनीतिक पहचान को मजबूत किया जा रहा है।

लेकिन इसी सशक्तिकरण के बीच एक गहरी विडंबना भी छिपी है। वही सोशल मीडिया जो लोकतांत्रिक संवाद और समता का मंच होना चाहिए था, वह आज जातिगत घृणा, ट्रोलिंग, साइबर बुलीइंग और अपमानजनक भाषणों का अड्डा बनता जा रहा है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स जैसे फेसबुक, एक्स, यूट्यूब, इंस्टाग्राम इत्यादि की नीतियाँ और उनका कंटेंट मॉडरेशन सिस्टम अक्सर इन घृणास्पद प्रवृत्तियों को रोकने में विफल रहते हैं। इसके अलावा, भारत का साइबर कानून ढांचा, जैसे सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (IT Act 2000) और एससी/एसटी अत्याचार निवारण अधिनियम (1989), इन ऑनलाइन अपराधों के संदर्भ में या तो अस्पष्ट हैं या उनका क्रियान्वयन शिथिल है।

सोशल मीडिया में दलित उपस्थिति

डॉ. एंथनी अक्कीनपल्ली की पुस्तक ''दलित साइबर एक्टिविज्म'' में बताया गया है कि किस प्रकार डिजिटल युग में दलित युवा सोशल मीडिया को सामाजिक न्याय के लिए उपयोग कर रहे हैं। यह पुस्तक यह भी दिखाती है कि सोशल मीडिया पर भले ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो, परंतु जाति आधारित हिंसा और हेट स्पीच उससे भी अधिक तीव्र रूप से फैल रही है। निशा पिल्लई द्वारा प्रकाशित शोध ''कास्ट एंड साइबर स्पेस : दी रियलिटी ऑफ ऑनलाइन दलित डिस्क्रिमिनेशन'' यह दिखाती है कि ट्विटर और फेसबुक जैसे मंचों पर दलित एक्टिविस्ट्स को किस प्रकार ट्रोलिंग, रिपोर्टिंग और डिजिटल उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है।

रिपोर्ट्स और आंकड़े :

NCRB (नेशनल क्राइम रिकार्ड्स ब्यूरो) की रिपोर्टों के अनुसार साइबर अपराधों में दलितों के प्रति नफरत फैलाने वाले अपराधों की संख्या में पिछले वर्षों में बढ़ोतरी हुई है। हालांकि आंकड़े सीमित हैं, परंतु यह प्रवृत्ति चिंताजनक है। इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन (IFF) और इक्वलिटी लैब्स जैसी संस्थाओं ने विभिन्न रिपोर्टों में बताया है कि गूगल, फेसबुक, इंस्टाग्राम, और ट्विटर जैसे प्लेटफॉर्म्स पर जातिवादी सामग्री को हटाने की दर बहुत कम है, और मॉडरेशन नीतियाँ पश्चिमी देशों के मानकों पर आधारित हैं, जो भारतीय जाति संदर्भ को पहचानने में विफल रहती हैं।

केस स्टडी और हाल की घटनाएँ :

2019 में पायल तड़वी (एक आदिवासी डॉक्टर) की आत्महत्या के बाद सोशल मीडिया पर उसकी जाति को लेकर की गई टिप्पणियाँ दर्शाती हैं कि कैसे डिजिटल स्पेस भी संस्थागत जातिवाद से अछूता नहीं है। रोहित वेमुला के केस के बाद सोशल मीडिया पर ''दलित लाइवेस मैटर'' आंदोलन तेज हुआ, लेकिन उसी के साथ–साथ उसे ट्रोल भी किया गया। आम्बेडकर जयंती पर यूट्यूब और ट्विटर पर वायरल होने वाले जातिवादी मीम्स और वीडियोज भी इसी प्रकार की डिजिटल हिंसा

के उदाहरण हैं।

कानूनी और विधिक समीक्षा :

IT Act 2000, SC/ST प्रिवेंशन ऑफ एट्रोसिटीज एक्ट, 1989, और इंडियन पीनल कोड की धारा 153ए व 295ए जैसे कानून डिजिटल स्पेस में नफरत फैलाने वालों पर लागू हो सकते हैं, लेकिन इनके क्रियान्वयन में अस्पष्टता, धीमापन और कमजोर कानूनी जागरूकता इन कानूनों की प्रभावशीलता को सीमित करते हैं। कई शोध जैसे कि लॉरेंस लियांग का शोध ''फ्रीडम ऑफ स्पीच एंड हेट स्पीच इन इंडिया'' यह दर्शाते हैं कि भारत में हेट स्पीच और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाना अब भी एक कानूनी चुनौती है।

अध्ययन की पद्धति

इस शोध में गुणात्मक अध्ययन पद्धति को अपनाया गया है, जिसमें सामाजिक परिप्रेक्ष्य, अनुभवों, मीडिया रिपोर्ट्स, ऑनलाइन घटनाओं और कानूनी प्रावधानों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। यह एक वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन है जो सोशल मीडिया पर दलितों के प्रति हो रहे जातिगत उत्पीड़न के स्वरूपों, कारणों, और परिणामों का परीक्षण करता है।

डेटा के स्रोत – दलित सोशल मीडिया एक्टिविस्ट्स के पोस्ट्स व अनुभव, ऑनलाइन ट्रोलिंग व घृणा भाषण के स्क्रीनशॉट्स, समाचार लेख, रिपोर्ट्स, साइबर अपराध से संबंधित सरकारी आंकड़े (NCRB Report) शोध पत्र और विधिक दस्तावेज, सोशल मीडिया नीतियों से संबंधित दस्तावेज।

डेटा संग्रह की विधि

डिजिटल एथनोग्राफी के माध्यम से सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स का अवलोकन किया गया।दलित समुदाय से संबंधित हैशटैग्स (#DalitLivesMatter, #JaiBhim आदि) पर पोस्टों का अध्ययन किया गया। कुछ चर्चित ऑनलाइन ट्रोलिंग के मामलों का केस स्टडी स्वरूप में विश्लेषण किया गया।

विश्लेषण

सामग्री विश्लेषण द्वारा विषयवस्तु की पहचान और वर्गीकरण किया गया। तुलनात्मक विश्लेषण द्वारा सामाजिक व कानूनी प्रतिक्रिया का मूल्यांकन किया गया।

निष्कर्ष एवं चर्चा

इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट रूप से सामने आया कि सोशल मीडिया जहाँ एक ओर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक संवाद का मंच है, वहीं दूसरी ओर यह जातिगत भेदभाव और दलितों के प्रति डिजिटल उत्पीड़न का भी नया स्वरूप बन चुका है। शोध में यह पाया गया कि जैसे ही दलित समुदाय के लोग अपने अधिकारों, पहचान या सामाजिक न्याय से संबंधित मुद्दों पर बोलते हैं, वैसे ही उन्हें संगठित ट्रोलिंग, जातिसूचक टिप्पणियों, मीम्स और मानसिक दबाव का शिकार होना पड़ता है। शोध में पोस्ट्स का विश्लेषण करते हुए यह देखा गया कि जातिवादी मानसिकता अब केवल सामाजिक ढाँचे तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह इंटरनेट के खुले मंच पर निडरता से सामने आ रही है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स की मॉडरेशन नीतियाँ दलित विरोधी सामग्री को रोकने में असफल रही हैं। इसके पीछे तकनीकी अनभिज्ञता, भाषाई सीमाएँ और स्थानीय सामाजिक संदर्भों की अनदेखी प्रमुख कारण हैं। यदि डिजिटल स्वतंत्रता को सुरक्षित और समतामूलक बनाना है, तो समाज, सरकार, कानून और टेक्नोलॉजी–चारों को मिलकर सक्रिय भूमिका निभानी होगी। शोध में यह भी सामने आया कि भारतीय साइबर कानून अभी भी जातिगत अपराधों को प्रभावी ढंग से परिभाषित और नियंत्रित करने में सक्षम नहीं हैं। SC/ST अत्याचार निवारण अधिनियम का डिजिटल विस्तार स्पष्ट नहीं है, और IT एक्ट की कई धाराएँ पुराने संदर्भों में ही सीमित हैं। दलित समुदाय में डिजिटल साक्षरता और साइबर अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाई जाए। सोशल मीडिया न तो पूर्ण स्वतंत्रता का माध्यम है, न ही पूरी तरह उत्पीड़न का क्षेत्र–यह एक 'डिजिटल युद्धभूमि' है, जहाँ सामाजिक न्याय और जातिगत नफरत के बीच संघर्ष जारी है।

– राधा सिंह[1] (शोधार्थी)
श्री रामस्वरूप मेमोरियल युनिवर्सिटी
मोबा. 79053 05590

– डॉ. मिली सिंह[2]
श्री रामस्वरूप मेमोरियल युनिवर्सिटी
मोबा. 63949 82956

संदर्भ :

"सोशल मीडिया और जातीय हिंसा" – हिंदुस्तान समाचार पत्र, विशेष रिपोर्ट, 14 अप्रैल 2021।

अंबेडकर, भीमराव रामजी (2013)। जाति का विनाश। नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट।

अक्कीनपल्ली, एंथनी (2019)। डिजिटल युग में दलित आंदोलन : एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण। भारतीय समाजशास्त्र पत्रिका, खंड 24, अंक 3, पृष्ठ 145–162।

इंटरनेट फ्रीडम फाउंडेशन (2021)। भारत में घृणा भाषण और सोशल मीडिया नीतियाँ। रिपोर्ट सं. IFF/2021–07।

अवसाद प्रबंधन में योग की भूमिका

– **दिगविलास दिनकरभाई कानड़िया** (शोधार्थी)
– **डॉ. शाम गणपत तिखे** (सहायक प्राध्यापक)

सारांश

अवसाद एक आम और गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्या है, जो सोचने, महसूस करने और दैनिक कार्यों को प्रभावित करती है। इसके लक्षणों में उदासी, रुचि की कमी, ऊर्जा में बदलाव और नींद की समस्याएँ शामिल हैं। भारत की एक प्राचीन प्रथा, योग, अवसाद के लक्षणों को कम करने और जीवन की गुणवत्ता सुधारने में मदद कर सकती है। इन अभ्यासों को किसी योग्य योग प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में करना चाहिए।

कूट शब्द – अवसाद, योग चिकित्सा, मानसिक स्वास्थ्य

परिचय

अवसाद एक सामान्य और गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्या है जो दुनिया भर में लाखों लोगों को प्रभावित करती है। यह एक जटिल विकार है जो किसी व्यक्ति की सोचने, महसूस करने और दैनिक जीवन में कार्य करने की क्षमता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। अवसाद के लक्षणों में निरंतर उदासी, रुचि या आनंद की कमी, ऊर्जा स्तर में परिवर्तन, नींद और भूख की आदतों में बदलाव, ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई, बेचैनी या सुस्ती, अत्यधिक अपराधबोध या बेकार महसूस करने की भावना, और यहां तक कि आत्महत्या के विचार शामिल हो सकते हैं (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2023)। योग, जो भारत से उत्पन्न एक प्राचीन प्रथा है, अवसाद के लक्षणों को कम करने और जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने में मदद कर सकता है। यह महत्वपूर्ण है कि ये योग अभ्यास योग्य योग प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में किए जाएं ताकि प्रत्येक योग अभ्यास को सही और सुरक्षित तरीके से किया जा सके (ब्रिजेस एवं शर्मा, 2017)।

योग का महत्व

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, अनुमानित 350 मिलियन लोग दुनिया भर में अवसाद से पीड़ित हैं (ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज स्टडी, 2017)। पारंपरिक उपचार जैसे दवा और मनोचिकित्सा सभी के लिए प्रभावी नहीं हो सकते हैं। कुछ व्यक्तियों को दवाओं के दुष्प्रभावों का सामना करना पड़ सकता है या पारंपरिक उपचारों का पालन करने में कठिनाई हो सकती है। इस संदर्भ में, योग जैसे मन–शरीर हस्तक्षेप ने अवसाद के संभावित उपचार विकल्प के रूप में महत्वपूर्ण ध्यान आकर्षित किया है (क्रेमर मज ंस., 2017)। योग शारीरिक आसनों (आसन), श्वास तकनीकों (प्राणायाम) और ध्यान (ध्यान) का एक समग्र मिश्रण प्रदान करता है। यह मस्तिष्क में रक्त प्रवाह बढ़ाकर, तनाव हार्मोन को कम करके और विश्राम प्रतिक्रिया को सक्रिय करके अवसाद के लक्षणों को कम करने में मदद कर सकता है। इसके अतिरिक्त, योग 'फील–गुड' हार्मोन जैसे सेरोटोनिन और डोपामाइन के उत्पादन को बढ़ा सकता है, जो मूड, नींद की गुणवत्ता और समग्र मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने में सहायक होते हैं (वुडार्ड, 2011)।

योग अभ्यास

अवसाद प्रबंधन के लिए विशेष योग अभ्यास निम्नलिखित हो सकते हैं :

आसन

- शीर्षासन (Headstand) : मस्तिष्क तक रक्त प्रवाह बढ़ाता है।
- सर्वांगासन (Shoulder Stand) : थायरॉयड ग्रंथि को उत्तेजित करता है।
- सेतु बंध आसन (Bridge Pose) : तनाव को कम करता है ।
- बालासन (Child's Pose) : तंत्रिका तंत्र को शांत करता है।
- शवासन (Corpse Pose) : गहरी विश्राम मुद्रा।

प्राणायाम

- अनुलोम विलोम (Alternate Nostril Breathing) : मन को शांत करता है।
- भ्रामरी (Bee Breath) : चिंता को कम करता है।

ध्यान

मानसिक प्रशिक्षण प्रक्रिया जो अवसाद के लक्षणों को कम करने में मदद करती है।

निष्कर्ष

योग एक प्रभावी और सुरक्षित विधि है जो अवसाद के लक्षणों को कम करने और जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने में सहायक होती है। यह तनाव को कम करता है, मूड को बेहतर बनाता है, और शरीर और मन के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। नियमित योगाभ्यास योग्य प्रशिक्षक के मार्गदर्शन में किया जाना चाहिए ।

— दिगविलास दिनकरभाई कानड़िया
(शोधार्थी) योग
साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविध्यालय,
सलामतपुर रायसेन मध्य प्रदेश–464661
मोबा. 9902833570

— डॉ. शाम गणपत तिखे
(सहायक प्राध्यापक)
साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविध्यालय,
सलामतपुर रायसेन मध्य प्रदेश–464661

संदर्भ :

- विश्व स्वास्थ्य संगठन. अवसाद. 2023.
- ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज स्टडी 2017. प्रमुख अवसाद विकारों के लिए वैश्विक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय घटना दरें। The Lancet Psychiatry-2018, 6(11) : e8584.
- ब्रिजेस, ई., शर्मा, एम. अवसाद के लिए योग की प्रभावशीलता : एक प्रणालीगत समीक्षा एवं मेटा–विश्लेषण। Journal of Evidence-Based Complementary & Alternative Medicine. 2017, 22 (4) : 1017–1028.
- क्रैमर, एच.य लौचे, आर., लैंगहॉर्स्ट, जे., डोबोस, जी. प्रमुख अवसाद विकारों के लिए योग पर एक प्रणालीगत समीक्षा। Journal of Affective Disorders- 2017, 213:70–77.
- वुडार्ड, सी., योग का चिकित्सीय प्रभाव : International Journal of Yoga] 2011,4(2) : 49–54.

"शब्द मौन है मेरे घर में
मौन मुखर है मेरे घर में।
अक्षर–अक्षर बतियाते हैं।
शब्द–शब्द मुसकाते हैं।"

— डॉ. तारा परमार

संकल्प भूमि-वडोदरा (गुजरात)

ऐसा संकल्प संसार में कभी किसी ने नहीं लिया...

भीम संकल्प दिवस (23 सितंबर 1917) की हार्दिक मंगलकामनाऐं

हिन्दी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2024-2026 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में , ______________________

____

____

____

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक **पिंकी सत्यप्रेमी** ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स, 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार